[Conference-Composition of Colours :December,2014] ISSN- 2350-0530
DOI: https://doi.org/10.29121/granthaalayah.v2.i3SE.2014.3691

INTERNATIONAL JOURNAL of RESEARCH –GRANTHAALAYAH
A knowledge Repository
Art

संगीत के रागों में रंगों का समंवय

डॉ. (श्रीमती) आशा खरे
सहायक प्राध्यापक (संगीत) शासकीय कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, छतरपुर (म.प्र.)

ललित कलाओं में संगीत को श्रेष्ठ माना गया है। काव्य एवं संगीत का माध्यम ध्वनि है। ध्वनि ही राग को प्रकट करने वाला माध्यम है। श्भारतीय संगीत में राग का एक विशिष्ट स्थान है। राग का दो अर्थों में प्रयोग हुआ है, एक सामान्य, दूसरा विशेष। सामान्य अर्थ में राग रंजकता का वाचक है और विशेष अर्थ में वह एक ऐसी नादमय विशिष्टता क द्योतक है जो स्वर देह और भाव देह से समन्वित है। रंजकता से तात्पर्य है जो राग सुखद एवं आनन्ददायक है। नादमय विशिष्टता का अर्थ है कि प्रत्येक राग का एक निजी विशिष्ट भावमय रंग है, जो उसे दूसरों से पृथक करता है। राग एक पृथक भाव है, जो अन्य रागों की अपेक्षा अपना स्वतंत्र और विशिष्ट अस्तित्व रखता है।भरतमुनि ने अपने नाट्यशास्त्र में जाति गायन का उल्लेख किया है। राग की व्याख्या मतंगमुनि ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ श्वृहद्देशीयश में की है। ग्राम- मूर्छना, जाति का स्थान धीरे-धीरे राग ने ग्रहण करना शुरू किया। ष्जन-चित्त-रंजक ध्वनि-विशेषष कह कर राग को प्रतिष्ठित किया गया है। राग शब्द का उद्गम ष्रञ्जष धातु से है। इस धातु में ष्घञष प्रत्यय जोड़ने से षरागष संज्ञा शब्द निर्मित होता है, जिसका अर्थ है षंगष संगीत में षरागष श्रोता को अपने रंग में रंग लेता है जिसे अलौकिक आनन्द की स्थिति माना गया है। संगीत में रंजकता के लिये राग संगीत का अविष्कार हुआ है। कालांतर में रागों का पूर्ण विकास शारंगदेव के समय में हुआ। रागों की जाति, अंश, गृह, न्यास, अपन्यास, मूर्छना, वर्ण, अलंकार, रस और अंत में उस राग की फलप्राप्ति का उल्लेख उनके ग्रंथ में मिलता है।

श्स्वर-देह अंगों को समझने के लिये आवश्यक है कि यह ढूंढने का प्रयास किया जाये कि रंग देने की शक्ति किन तत्वों में निहित है। एक ओर तो राग का अपना पृथक भाव है जो अन्य रागों की अपेक्षा अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व रखता है और दूसरी ओर उसका एक सामन्य स्वरूप भी है जिसके कारण एक ही राग के अंतर्गत अनेक बंदिशें और आलाप तान की उद्भावनायें समाविष्ट की जाती हैं। उदाहरण के लिये राग बिहाग को ले लें। इसमें अनेक बंदिशें प्रचलित हैं, जो उठाव, स्वर-संघटना आदि में अल्प अंतर होने के कारण, एक दूसरे से कुछ-कुछ भिन्न होते हुए भी उसी एक राग के अंतर्गत रहती हैं। उसी प्रकार विभिन्न कलाकार अपनी व्यक्तिगत रुचि, साधना और स्फूर्ति के अनुसार आलाप-तान की उद्भावनायें करते हैं, जिनमें कलाकार के व्यक्तित्व की छाप के लिये पूरा अवकाश रहता है। यहाँ तक कि एक ही कलाकार द्वारा एक ही राग का भिन्न-भिन्न समय या अवसरों पर कुछ-कुछ भिन्न रूप से विस्तार प्रस्तुत होता है। इस प्रकार कलाकार के व्यक्तित्व-भेद से, अवसर-भेद से, शैली-भेद से एवं ऐसे ही अन्य कारणों से, एक ही राग की प्रस्तुतियों में जो विभिन्नतायें आती हैं, उन सबको अपने क्षेत्र में समेटकर रखने की क्षमता षरागष में अवश्य होती है।

भरतमुनि के समय में प्रचलित जाति गायन के लक्षण वर्तमान में राग के लक्षण के नामे से जाने जाते हैं। राग लक्षण में ग्रह स्वर, अंश, न्यास, अपन्यास, तार-मन्द्र, अल्पत्व-बहुत्व, षाड़व-औड़्व और वर्तमान में वादी-सम्वादी आदि आते हैं। ग्रह स्वर को राग का आरम्भक स्वर कहते हैं। कुछ राग ऐसे हैं जिनका गायन षड़ज स्वर से आरम्भ न करके ग्रह स्वर से करते हैं जैसे राग यमन और विहाग। राग यमन का आरम्भक या ग्रह स्वर नि रे ग और राग विहाग का आरम्भक स्वर नि सा ग - यहाँ पर नि स्वर ग्रह स्वर है, जबकि दोनों रागों का वादी स्वर गन्धार है। बाहुल्य वादी स्वर को मिलना चाहिये लेकिन राग का आरम्भक स्वर निषाद है, अत: राग गायन आरम्भ करते समय निषाद पर बल दिया गया। दूसरा लक्षण अंश स्वर है जिसे वर्तमान में राग गायन में वादी स्वर कहते हैं। अंश स्वर राग में रंजकता लाने का कार्य करता है अर्थात अंश स्वर राग में रंग जमाने में या रस की अभिव्यक्ति में मुख्य रूप से

INTERNATIONAL JOURNAL of RESEARCH –GRANTHAALAYAH
A knowledge Repository
Art

सहायक होता है। यह स्वर राग का प्राण स्वर या जीव स्वर कहलाता है। राग सौन्दर्य एवं रस की अभिव्यक्ति में अंश स्वर की अहम भूमिका होती है।

राग का एक लक्षण अल्पत्व-बहुत्व है। किस स्वर का राग में कितनी मात्रा में प्रयोग होता है, इस का प्रयोग भी राग में दो तरह से किया जाता है। अल्पत्व का प्रयोग लंघन और अनभ्यास के द्वारा एवं बहुत्व का प्रयोग अलंघन और अभ्यास द्वारा किया जाता है। षाड़व-औड़व राग का लक्षण राग में प्रयुक्त होने वाले स्वरों की संख्या पर निर्भर है। उपरोक्त दस लक्षणों के अतिरिक्त स्पर्श स्वर या कण स्वर, वादी-सम्वादी, अनुवादी-विवादी, सम्वाद-विवाद, षड़ज मध्यम भाव, षड़ज पंचम भाव का राग के स्वर देह में महत्वपूर्ण स्थान है।

श्कुछ प्रकार के रंग सचमुच मस्तिष्क की भावनात्मक स्थितियों से वास्तविक सम्बन्ध रखते हैं।साहित्य दर्पण में स्पष्ट लिखा है दृ जिसमें कल्पना शक्ति नहीं होती वे नाट्यशाला में निर्जीव कठपुतली और मूर्तियों की तरह बैठे रहते हैं वे रस की अनुभूति नहीं कर सकते। पाश्चात्य विद्वान क्रोचे का कहना है कि चित्र, काव्य और प्रत्येक कलाकृति केवल उन्हीं की अंतरात्माओं को प्रभावित करते हैं जो उसके आस्वाद के लिये सक्षम होते हैं, अन्य किसी को नहीं। भरत ने नाट्यशास्त्र में स्पष्ट लिखा है दृश्सब बेकार है, जप-तप करना, मंत्रों को पढ़ना, माले जपना, साधना-भक्ति करना, जब तक कि कोई रंगों के वास्तविक मर्म को, अक्षरों के वास्तविक महत्व, आभाओं को और आकृतियों के गुणों को नहीं जान लेता।

जब तक स्वर ष्स्थायीष् नहीं होता, तब तक वह ष्भावष् का प्रकाशक होता है, ष्रसष् का नहीं। उस अवस्था में उसके द्वारा अभिव्यक्त भाव ष्सञ्चारीष् होता है, स्थायी भाव नहीं। उस समय वह स्वरविशेष ष्स्थायी स्वरष् पर आलम्बित स्थायी भाव का परिपोषण करता है। नुभव यह सिद्ध करता है कि जिन रागों में मध्यम स्थायी स्वर होता है, वे सन्योग श्रृंगार और जिनमें पञ्चम अंशस्वर होता है, वे विप्रलम्भ (वियोग) श्रृंगार के व्यञ्जक होते हैं।

राग गायन की ख्याल बन्दिशों में सबसे अधिक श्रृंगार रस (सन्योग श्रृंगार एवं वियोग श्रृंगार) का प्रयोग हुआ है। इस श्रेणी में काफी और खमाज थाट के राग आते हैं। कोमल रे, ध वाले सन्धि प्रकाशकालीन राग, शांत और करुण रस के परिचायक हैं। ओज के साथ गाये जाने वाले रागों को वीर रस की श्रेणी में लेते हैं, जैसे अड़ाना, शंकरा, हमीर और मालकौंस। ऋतु-विशेष अवसर पर गाये जाने वाले रागों में देश, मल्हार, बसंत, बहार आदि राग आते हैं।

रस सृष्टि में आलाप तान की भूमिका महत्वपूर्ण है। रसात्मकता संगीत का प्राण है। राग प्रस्तुतिकरण में भाव पक्ष तथा कला पक्ष दोनों का महत्व है। श्वर्तमान गायन के क्षेत्र में गायक जब राग प्रस्तुत करता है तब बन्दिश की स्थायी गा लेने के पश्चात आलाप गायन प्रारम्भ करता है और गीत या बन्दिश के बोलों को लेकर आलाप करते हैं जिसे बोलालाप कहते हैं। अत: राग गायन द्वारा भाव प्रकाशन के लिये गीत के बोलों पर भी ध्यान देना आवश्यक है और बन्दिश के बोलों को भावपूर्ण ढ़ंग से कल्पनाशक्ति द्वारा विभिन्न स्वर-समुदायों में पिरोकर आलाप करने में ही सम्भव है। वर्तमान में बोलालाप का प्रचलन अधिक है और यह आलाप बन्दिश की लय के अनुकूल विलम्बित लय में किया जाना चाहिये जिससे राग का स्वरूप स्पष्ट हो सके।

1 भारतीय संगीत दृ एक वैज्ञानिक विश्लेषण / डॉ. स्वतंत्र शर्मा / पृष्ठ 91
2 सौन्दर्य / राजेन्द्र वाजपेयी / पृष्ठ 147 एवं 159
3 सौन्दर्य / राजेन्द्र वाजपेयी / पृष्ठ 159, 160
4 भरत का संगीत सिद्धांत / श्री कैलाश चन्द्रदेव बृहस्पति / पृष्ठ 270, 271